भारत में शहरीकरण, आप्रवासन और अपवर्जन
Urbanization, Migration, and Exclusion in India

प्रीति मान
Preeti Mann
July 30, 2012

सन् 2030 तक भारत की शहरी आबादी बढ़कर 590 मिलियन हो जाएगी अर्थात् बढ़ी हुई आबादी भारत की वर्तमान शहरी आबादी से लगभग 300 मिलियन अधिक होगी. इसमें से अधिकतर बढ़ोतरी का कारण होगा, ग्रामीण-शहरी आप्रवासन. पिछले शोध से पता चला है कि शहर की गरीब आबादी में बढ़ोतरी का संबंध परिवर्तनशील अर्थव्यवस्थाओं में आबादी के स्थानांतरण से है, जिससे आंशिक रूप से पता चलता है कि आखिर ग्रामीण-शहरी आबादी के आप्रवासन को अक्सर गरीबी का पर्याय क्यों माना जाता है. भारतीय शहरीकरण का एजेंडा बहुत हद तक गरीब आप्रवासियों को शहरी नागरिक के रूप में समन्वित करने पर निर्भर करता है. नीतिगत परिप्रेक्ष्य में यह महत्वपूर्ण है यदि हम भारत को ऐसे समतामूलक समाज के रूप में उभारने की आकांक्षा रखते हैं तो ''साधन संपन्न'' और ''साधनविहीन'' लोगों के बीच के अंतराल को समाप्त करना आवश्यक होगा. शहरीकरण से भारत की विकास संबंधी कुछ त्रुटियों को दुरुस्त करने का नया अवसर मिलता है. इसलिए यह प्रस्ताव किया जा सकता है कि राज्य और उनके नागरिक जिन प्रक्रियाओं और ढाँचों के रूप में प्रतिबिंबित होते हैं और जिनके ज़रिए अपवर्जन को निर्मित, प्रचारित और अनुरक्षित या उपेक्षित भी किया जाता है, उन तंत्रों को लक्षित किया जाए जिनकी सहायता से इन्हें मिटाया जा सकता है या इनके चारों ओर सामाजिक सक्रियता को बढ़ाया जा सकता है.

विषमता के संदर्भ में यह ग्रामीण-शहरी अंतराल ही है जो सबसे पहले ध्यान में आता है. यद्यपि बहुत-से अकादमिक कार्य परंपरागत रूप में भारत में ''साधन संपन्न'' और ''साधनविहीन'' ग्रामीण लोगों पर ही केंद्रित रहे हैं, लेकिन शहरी संदर्भ में इसके आयामों और तंत्रों के बारे में तुलनात्मक रूप में हमारे पास ''न'' के बराबर ही जानकारी है और हम इन्हें समझते भी बहुत कम हैं. भारत में ग्रामीण बनाम शहरी के रूप में बहुत सरल वर्गीकरण कर दिया जाता है और इस पर ''पिछड़े'' और ''आधुनिक'' का घिसा-पिटा लेबल भी लगा दिया जाता है. जिस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है वह यह है कि लेबलिंग और वर्गीकरण के ये कारनामे अनिवार्यतः बहुत उदार और अराजनीतिक ही नहीं होते. इनसे विकास के एजेंडे के तर्क को बल मिलता है और शहरीकरण के मिशन का यह औचित्य सिद्ध होता है कि भारत इसकी ओर दृढ़ता से आगे बढ़ रहा है. यह भी हैरानी की बात है कि गुड़गाँव को, जो भारत का सबसे नया शहरी केंद्र है,मिलीनियम सिटी के नाम से अभिषिक्त किया जा रहा है, जबकि वास्तविकता से यह बहुत दूर है.

परंपरागत गाँवों के निवासियों को छोड़कर, जिनकी ज़मीन पर गुड़गाँव को बनाकर खड़ा किया गया है,यहाँ लगभग सभी लोग आप्रवासी हैं. परंतु आप्रवासी शब्द गरीबों और विस्थापितों के बिंब के साथ ज़्यादा मेल खाता है जो अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करते हैं और *झुग्गी-झोपड़ियों* में रहते हैं. आदर्श शहर के निवासी के बारे में एक अनकही समझ यही है कि वह एक खास सामाजिक और आर्थिक वर्ग से संबद्ध होता है और उसके बारे में यही समझा जाता है कि वह एक ऐसा निवासी है जिसके चारों ओर शहरी नियोजन और विकास का मंज़र होता है. दिलचस्प बात तो यह है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के अवस्नातक

श्रेणी के छात्र इस तथ्य के बावजूद कि उनमें से कुछ छात्र स्वयं उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली आए हैं और उन्हें ऐसे संकाय सदस्य पढ़ा रहे हैं, जो देश के अन्य भागों से वहाँ आए हैं, आप्रवासियों का उदाहरण देते हुए अनिवार्य रूप में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले कामगारों का ही उदाहरण देते हैं. खतरे की बात तो यह है कि आम तौर पर यही उत्तर सभी जगह दोहराए जाते हैं. तथाकथित आप्रवासियों के अलावा अन्य आप्रवासी ''बाहरी लोग'',''घुसपैठिये'',''गैर-कानूनी काबिज़'' और ''अपराधी'' नाम से पुकारे जाते हैं. इससे ''हमें'' और ''उन्हें'' के बीच एक बनावटी भेद पैदा हो जाता है, जो प्रतीकात्मक और शारीरिक हिंसा की कार्रवाइयों को कानूनी स्वरूप प्रदान करता है और समाज द्वारा उन्हें अपवर्जित कर दिया जाता है.

भारत के संदर्भ में शहरी विकास गंभीर विरोधों और भारी अंतर्विरोधों की कहानी है. जहाँ एक ओर शानदार इमारतें, आकर्षक शॉपिंग मॉल, शानदार कॉर्पोरेट भवन और साफ़-सुथरे आवासीय कॉम्लेक्स हैं, जहाँ लोग साफ़-सुथरे, सुरक्षित और सेहतमंत वातावरण में रहते हैं और दूसरी ओर झोपड़ों और झुग्गियों से अटी-पड़ी बस्तियाँ भी हैं, जिनमें लोग अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत अमानवीय हालात में रहते हैं और निर्माणाधीन स्थलों पर मज़दूरी करके, घरेलू काम करके,रिक्शा चलाकर, सुरक्षा गार्ड की ड्यूटी करके, सड़क पर रेड़ी लगाकर और इसी प्रकार के छोटे-मोटे काम करके गुज़ारा करते हैं. हालांकि शहरी विकास की निर्बाध प्रक्रिया में उनका योगदान अपरिहार्य होता है, फिर भी शहरी विकास के नियोजन और चित्रण में उनकी ज़रूरतों और दयनीयता की अनदेखी और उपेक्षा कर दी जाती है.

भारत में नागरिकों के आंतरिक आप्रवासन या अदला-बदली पर कोई रोक-टोक नहीं है. लोग विस्थापन से बचने के लिए या आर्थिक या अन्य प्रकार के बेहतर अवसरों की तलाश में एक राज्य से दूसरे राज्य में बेरोक-टोक घूमने के लिए स्वतंत्र हैं. परंतु स्थानीय सरकारें और भारत का मध्यम वर्ग आर्थिक रूप से गरीब इन आप्रवासियों को बाहरी मानता है और शहरों में उनके निवास के दावे को गैर-कानूनी मानता है.
हाल ही में, कई विद्वानों ने शहरी प्रशासन और मध्यम वर्ग में शहर के इस गरीब वर्ग, विशेषकर शहरों की ओर आने वाले आप्रवासियों के प्रति बढ़ती विद्वेष की भावना की ओर संकेत करना शुरू कर दिया है. दिल्ली में आयोजित 2010 के राष्ट्रमंडल खेलों के समय शहर के इन गरीब लोगों को जिनमें से अधिकांश ग्रामीण-शहरी आप्रवासी थे, जबरन दिल्ली से बाहर खदेड़ दिया गया था.

भारत में शहरीकरण का मुख्य कारण नव-उदारीकृत अर्थव्यवस्था की शक्तियाँ है, जहाँ नागरिकों से राज्य पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर रहने के बजाय आत्मनिर्भर रहने की अपेक्षा की जाती है. जिस तरीके से शहरीकरण की परिकल्पना की गई है और उसे कार्यान्वित किया गया है वह तरीका आदर्श शहरी नागरिक की इस परिकल्पना से अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है. भारत में शहरीकरण विवादास्पद हो गया है. सामाजिक समन्वय करने या धनी और गरीब लोगों के बीच की खाई को कम करने के बजाय यह दोनों के बीच विषमता को बढ़ा रहा है. और अधिक गहराई से देखें तो खराब शहरी नियोजन और अधूरी नीतियों के कारण भारत अपने अपेक्षाकृत युवा शहरों में समन्वय लाने के अवसरों को खो रहा है और लोग यह सोचने के लिए विवश हो रहे हैं कि आखिर शहर में वह कौन है जिसे अधिकार रखने का अधिकार है.

जहाँ एक ओर शहरों में ऐतिहासिक और परंपरागत रूप में जाति-आधारित भेदभाव को कम करने और हाशिये पर से उन्हें हटाने में मदद मिली है, वहीं इस बात पर ज़ोर देने की भी आवश्यकता महसूस की जा रही है कि

है कि शहरी इलाकों में विषमता और अपवर्जन के ऐसे नए रूप उभर रहे हैं, जो जातिगत भावना से ऊपर उठ गए हैं. इसलिए हमें अभिवर्जन की राजनीति को नई दृष्टि से ठीक उसी तरह से देखने और समझने की आवश्यकता है जिस तरह से शहरी भारत में जहाँ सामाजिक और आर्थिक वर्ग अपने आप में एक नई जाति बन गई है, उसका निर्माण और प्रचार हुआ था. सभी शहरी इलाकों में प्रवेश के लिए जातिगत पहचान लुप्त हो जाना ही काफ़ी नहीं है, क्योंकि उनकी सामाजिक पहचान भी इस प्रकार के अधिकांश क्षेत्रों में उनके प्रवेश को रोक सकती है. इसलिए भारत भले ही रंगभेद वाले अफ्रीका की तरह न हो, जहाँ राज्य ने ही अपवर्जनात्मक रीतियों को कानूनीजामा पहना दिया था, लेकिन समन्वित समाज में उनके लिए अधिकारों को सक्रिय रूप से लागू करने के लिए ऐसा कोई प्रयास भी नहीं किया जा रहा है जिनसे इन लोगों को पूर्ण शहरी नागरिक होने का दर्जा भी मिल सके. भारत में शहरी इलाके भेदभाव और हाशिये पर ढकेलने का चुपचाप प्रचार करने के लिए बदनाम हैं.

जहाँ शहरी इलाकों में इतने आर्थिक अवसर हैं कि आप्रवासियों को सफलतापूर्वक संक्रमण का अवसर मिल सकता है,वहीं यह शहर की क्षमता पर भी निर्भर करता है कि वह नए प्रवेश करने वालों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करे. उनके लिए सुरक्षित आवास, पानी, बिजली, स्कूल और स्वास्थ्य सेवाओँ जैसी सेवाओं का नियोजन करना आवश्यक है. यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि सरकारें और सिविल सोसायटी शहरी इलाकों में अपवर्जन के ढाँचों और प्रक्रियाओं को चिह्नित करने और उन्हें घटाने के लिए मिलजुलकर प्रयास करें. परंतु ऐसा लगता है कि भारत में इसके लिए संस्थागत और राज्य स्तर पर नाम मात्र के ही प्रयास किए जाते हैं.परंतु ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के आरंभ में 24.7 मिलियन की शहरी आवासन की कमी रही है. इस कमी में आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर वर्गों और निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए 99 प्रतिशत की कमी थी. आप्रवासी इन्हीं वर्गों में विशेष रूप से आते हैं.

यद्यपि अधिकांश आप्रवासियों को शहरी भारत में भूमिपुत्र के रूप में कानूनी नागरिक का दर्जा मिलना चाहिए, लेकिन नागरिकों का अधिकार उन्हें तभी मिल सकता है जब उनके पास संपत्ति का पट्टा हो या मिलकियत के कागज़ात हों, पैन कार्ड हो, बैंक विवरण, बिल या मतदाता आईडी जैसे सरकारी दस्तावेज़ हों. इनके बिना, दस्तावेज़रहित आप्रवासियों को बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं के लिए भी काले बाज़ार की अर्थव्यवस्था में बढ़ी हुई कीमत ही अदा करनी पड़ती है. भूमिगत अर्थव्यवस्था से भी संकेत मिलता है कि सेवाओं की डिलीवरी में भी राज्य की भूमिका और संस्थागत समर्थन नगण्य है.

यदि समावेशी तरीके से विकास किया जाए तो शहरी विकास के माध्यम से सच्चे अर्थों में दरिद्रता की कुछ बाधाओं और प्रक्रियाओं को चुनौती देने और उन्हें बदलने के लिए नए अवसर जुटाकर आप्रवासियों का सामाजिक विकास और समन्वय किया जा सकता है. लोगों तक पहुँच बनाने के लिए समन्वयकारी नियोजन, राजनैतिक इच्छाशक्ति और क्षमता बढ़ाने वाली नीतियों को लागू करना होगा. शिक्षा के अधिकार से संबंधित अधिनियम एक ऐसा मील का पत्थर रहा है जिसके हस्तक्षेप से आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए निजी शैक्षणिक प्रतिष्ठानों के दरवाज़े खुल गए हैं. अभी बहुत आगे जाना है, परंतु स्वास्थ्य, आवासन और मज़दूरों के अधिकार संबंधी क्षेत्रों के लिए उसी प्रकार के कानून बनाने होंगे. अच्छी नीति का निर्माण करना अपने आपमें समस्या का आधा समाधान तो है ही. लेकिन उसके उचित कार्यान्वयन के बिना यह मात्र औपचारिकता बनकर रह जाएगी. इससे सबसे अधिक अपवर्जित वर्ग को कोई मदद नहीं मिलेगी.

गरीब आप्रवासी जनता को स्थायित्व प्रदान करने से ही भारत के शहरी विकास का बेहतर प्रबंधन,व्यवस्थापन और समन्वयन हो सकता है. इस बारे में चीन से बहुत-से रोचक सबक सीखे जा सकते हैं, जहाँ चीन के मंत्रिमंडल ने जनवरी, 2010 में एक ऐसा दस्तावेज़ जारी किया था जिसमें युवा आप्रवासियों की शहरी समन्वयन की समस्या को सुलझाने का संकल्प किया गया था. आप्रवासियों की आबादी द्वारा अपनी सामूहिक पहचान बनाने से अपवर्जित आप्रवासियों को यह लाभ होगा कि वे अपने अपवर्जन के आधार पर ही संगठित हो जाएँगे. अपने अधिकारों के प्रति सक्रियता और जारूकता से ही उस नकारात्मक और घिसी-पिटी सोच को बदला जा सकता है जिसे उन्होंने विरासत में प्राप्त किया है या जो उनमें घर कर गई है. इससे वे अपने अधिकारों के लिए साथ मिलकर लड़ सकेंगे और अपने जीवन और काम करने के हालात को बेहतर बनाने के लिए माँग कर सकेंगे और उसके लिए संघर्ष कर सकेंगे. इसके अलावा शहरी उच्च वर्ग की सामाजिक अभिवृत्ति को बदलने के लिए सक्रिय अभियान चलाया जाना चाहिए और उसके लिए भारी प्रचार किया जाना चाहिए.

शहरीकरण लगातार ही अध्ययन का अधिकाधिक महत्वपूर्ण, सामाजिक दृष्टि से गतिशील और अनुभवजन्य विषय बनता जा रहा है जिससे उन तंत्रों की छानबीन करने में मदद मिलेगी जो शहरों में आप्रवासियों को आने देने या रोकने का प्रयास करते हैं और उनके जीवनानुभवों का विवरण मिल जाएगा, जो अपने-आपमें बहुत महत्वपूर्ण है. यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो वह समय दूर नहीं, जब गाँवों के भीतरी इलाकों की तरह भारत के शहरी केंद्रों में भी विषमता बढ़ जाएगी और यह सामाजिक संघर्ष का रूप ले लेगा. यदि वर्तमान दर पर शहरीकरण बढ़ता रहा तो वह समय ज़रा भी दूर नहीं, जब संतुलन बिगड़ जाएगा और इसके परिणामस्वरूप हिंसा और असंतोष की ज्वाला भड़क उठेगी. इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम आगे बढ़कर अपने शहरों की स्थिति का अविलंब जायज़ा लें.

प्रीति मान अम्बेडकर विश्वविद्यालय,दिल्ली में सामाजिक मानव विज्ञानी हैं. उनसे mannpreeti@yahoo.com *पर संपर्क किया जा सकता है.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>